कबीर के काव्य में प्रेम तत्व

डॉ. सरोज कुमारी
हिन्दी विभाग
विवेकानन्द कॉलिज, दिल्ली

सारांशिका

कबीरदास के काव्य में प्रेम तत्व की महिमा को बराबर देखा जा सकता है क्योंकि उन्होंने माता–पिता, गुरु, स्वामी आदि के स्वरूप को भी स्वीकार करते हुए परमात्मा के प्रिय रूप को भी स्वीकार किया है। इसलिए इनके काव्य में सूफी सम्प्रदाय की भाँति प्रेम तत्व भी समाहित है जिसके कारण कबीर ने परमात्मा के प्रिय अर्थात् पति रूप को स्वीकार किया है जबकि सूफी मत में परमात्मा माशूक है आत्मा आशिक है। कबीर के दाम्पत्य संबंध में हरि 'पीव' है और वे उनकी 'बहुरिया' है। कबीर के काव्य में वैष्णव सम्प्रदाय के प्रेम तत्व के प्रभाव देखते हुए डा० त्रिगुणायत ने लिखा है–"कबीर में वैष्णव मत के सभी सारभूत तत्व विद्यमान है। अतः यह कहना है कि उनमें वैष्णवों के केवल प्रति और अहिंसा तत्व ही मिलते है। अधिक उपयुक्त नहीं है, निर्गुण राम का उपासक होने के कारण उन्हें वैष्णव न मानना, उस महात्मा के साथ अन्याय करना है।"

मुख्य शब्द : सूफी सम्प्रदाय, कबीरदास, दार्शनिक विचारधारा, प्रेम।

प्रस्तावना

कबीरदास के काव्य में प्रेम तत्व की महिमा को बराबर देखा जा सकता है क्योंकि उन्होंने माता–पिता, गुरु, स्वामी आदि के स्वरूप को भी स्वीकार करते हुए परमात्मा के प्रिय रूप को भी स्वीकार किया है। इसलिए इनके काव्य में सूफी सम्प्रदाय की भाँति प्रेम तत्व भी समाहित है जिसके कारण कबीर ने परमात्मा के प्रिय अर्थात् पति रूप को स्वीकार किया है जबकि सूफी मत में परमात्मा माशूका है आत्मा आशिक है। इस सम्बन्ध में **डॉ. सरनाम सिंह** ने लिखा है–''जो लोग यह कहते हैं कि कबीर ने सूफी प्रेम साधना से कुछ नहीं लिया, वे हाथी को देखकर भी उसके अस्तित्व का निषेध करते हैं। ऐसी बात नहीं है कि कबीर ने परमात्मा के केवल प्रिय (पति) रूप को ही अंगीकार किया था अपितु, माता, पिता, गुरु, स्वामी आदि अनेक रूपों में भी उन्होंने चित्रित किया है। सूफी सम्प्रदाय में इन सब रूपों को स्वीकार करने की स्वतन्त्रता नहीं है। सूफियों के लिये परमात्मा माशूक है, आत्मा आशिक है और कबीर के दाम्पत्य सम्बन्ध में हरि 'पीव' है और वे उनकी 'बहुरिया' है। 'पीव' और 'बहुरिया' के पीछे भारतीय दाम्पत्य जीवन की जो व्यन्जना है उसमें सूफी मान्यता का भी पुट है।'' जैसे–

''मेरी बहुरिया को धनिआ नाऊ।
लै राखियो रम जनिआ नाऊ।।''

कबीर ने भी सूफी मत की तरह पीड़ा को ही प्रेम का साधन माना है जिसकी अभिव्यक्ति इनके काव्य में दिखलाई देती है–

''आँखनियाँ झाँई पड़ी पीव निहारि निहार।
जीमड़ियाँ छाला पड़या पीव पुकारि पुकार।।''

और फिर–

''लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल।।''

कबीर के काव्य में वैष्णव सम्प्रदाय के प्रेम तत्व के प्रभाव देखते हुए **डॉ. त्रिगुणायत** ने लिखा है–''कबीर में वैष्णव मत के सभी सारभूत तत्व विद्यमान हैं। अतः यह कहना है कि उनमें वैष्णवों के केवल प्रति और अहिंसा तत्व ही मिलते हैं, अधिक उपयुक्त नहीं है। निर्गुण राम का उपासक होने के कारण उन्हें वैष्णव न मानना, उस महात्मा के साथ अन्याय करना है।'' इसलिए कबीर काव्य में वैष्णवी दया, करुणा, पर पीड़ानुभूति इत्यादि के अनेक उदाहरण मिलते हैं। अतः कबीर 'अहिंसा परमोधर्म' के समर्थक हैं। इन्होंने भक्ति को महत्व दिया है किन्तु उसकी साधना की कठिनता का भी उन्हें ज्ञान है–

''भगति दुवारा सांकरा, राई दसवें भाई।
मन तो मंगल होई रहा, क्यूँ करि सके समाई।।''

वैष्णव भक्त को वे सर्वोच्च पद प्रदान करते हैं–

''कबीर धनि ते सुन्दरी, जिनि जाया बैसनौं पूत।
राम सुमिरि निरभै हुवा, सब जग गया अऊत।।''

कबीरदास के काव्य में बौद्ध प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। बौद्ध साहित्य में और बौद्ध दर्शन में इस संसार की क्षणभंगुरता पर निराशा व्यक्त की गई है। अतः कबीर काव्य में यह प्रवृत्ति बहुत अधिक देखने को मिलती है :–

''पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जात।
देखत ही छिप जायेगा, जस तारा प्रभात।।''
''रहना नहिं देस बिरानो है।
यह संसार कागज की पुड़िया बून्द परे घुलि जानो है।।'' इत्यादि।

इसलिए ''कबीरदास शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा अनुभव ज्ञान को अधिक महत्व देते थे।''

सिद्धों और नाथों का प्रभाव भी कबीर के काव्य में देखा जा सकता है। कबीर ने योग साधना, षड्यन्त्र, इडा, पिंगला, सुषुम्ना आदि का वर्णन सिद्धों और योगियों के प्रभाव से किया है जिसका एक उदाहरण देखा जा सकता है :–

सुरति समांणी निरति मैं, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परचा भया, तब खुले म्यम्भ दुवार।।''

वस्तुतः ''पूर्ववर्ती नाथ सम्प्रदाय की धारा तो हिन्दू और मुसलमानों में समान रूप से चल रही थी।''

कबीर के काव्य में उनकी दार्शनिक विचारधारा की अभिव्यक्ति भी बराबर देखी जा सकती है। कबीरदास ने भी तत्कालीन परिवेश और परिस्थितियों को दृष्टि में रखकर ब्रह्म और जगत् अर्थात् इन दोनों के बीच माया आदि पर अपने विचार प्रकट किये हैं। मोक्ष आदि पर भी कबीर ने अपने काव्य में स्पष्ट कहा है। इसी को दृष्टि में रखकर उनकी विचारधारा को संक्षेप में देखा जा सकता है–

कबीर के ब्रह्म सम्बन्धी विचार को देखिए कहीं न कहीं कबीरदास ने कहा कि हमारा ध्यान निर्गुण और सगुण से परे है जिसकी स्थिति इस तरह है–

''निर्गुण सगुण से परै तहाँ हमारा ध्यान।''

अब यह निर्गुण सगुण से परे क्या होता है ? निश्चित रूप से इस बीच की स्थिति का पता लगाना कठिन है। कबीरदास ने इस सम्बन्ध में कुछ विचार प्रकट किये हैं :–

''जाके मुख माथा नहीं, नाहि रूप कुरूप।
पुहुप बास ते पातरा, ऐसा तत्व अनूप।।''

ऐसी स्थिति में कबीरदास ने जहाँ उन्होंने निर्गुणता को सराहा है वहाँ अन्यत्र उसके स्वरूप को अन्तर में स्थापित करके सगुण की ओर झुकाव भी देखने को मिलता है। इसलिए कबीरदास जी बड़े स्पष्ट शब्दों में कहते हैं :–

''कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढै बन माँहि।
ऐसे घट–घट राम हैं, दुनिया देखे नाहि।।''

अतः कहीं–कहीं कबीरदास ने हरि का सम्बन्ध मानवीय एषणाओं की समाप्ति और असमाप्ति के साथ जोड़ा है क्योंकि जब तक मनुष्य में अहंकार रहता है तब तक वह अपने को ही सबकुछ मानकर जीवत व्यतीत करता है। यथा–

''जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि हैं मैं नाहि।
सब अन्धयारौ मिट गयो दीपक रेखा माँहि।।''

कबीर के माया सम्बन्धी विचारधारा भी पग–पग पर बराबर दृष्टिगोचर हो रही है। इसलिए अन्य सन्तों की भाँति कबीरदास ने भी माया को जीव और ब्रह्म, साधक और साध्य के बीच की सबसे बड़ी बाधक शक्ति माना है। जब तक यह रहती है तब तक यह जीव को ठगती रहती है :–

''कबीरामाया मोहनी, जैसे मीठी खाँड।
सतगुरु की कृपा भई, नही तो करती भाँड।।
माया महा ठगिनी हम जानी।
तिरगुन फाँस लिये कर डोलै बोलै मधुरी बानी।।

अतः कबीर इस माया से हमेशा सावधान रहते हैं। इसलिए कबीरदास को ज्ञान की आँधी का आह्वान स्वीकार करते हुए कहते हैं–

''सन्तों ! आई ज्ञान की आँधी।
भ्रम की टाँटी सबै उड़ानी माया रहै न बाँधो।।

जगत सम्बन्धी कबीर के विचार भी इनके काव्य में बराबर देखने को मिलते हैं। इसलिए कबीरदास ने भी संसार को मिथ्या ही माना है किन्तु इतना नहीं जितना अद्वैतवादी मानते हैं। कबीर की स्थिति भी सूफियों जैसी दिखाई देती है जो इसी संसार के बीच से होकर ऊपर ब्रह्म तक पहुँचने की बात करते हैं। शंकराचार्य की तरह कबीर जगत् का त्याग करने की बात नहीं कहते हैं। बल्कि वह तो स्पष्ट कहते हैं कि इस संसार और इस सत्ता के बीच इस माया बन्धन को हटा दो तथा अपने आपको पहचानो। कबीरदास ने संसार के विषय में उन्होंने बड़ी निराशा व्यक्त की है–

''यह ऐसा संसार है जैसा सैबल फूल।
दिन दस के च्यौहार को झूठे रंगि न भूल।।''

इन पंक्तियों में जो भाव है वह अस्तित्वहीनता का भाव है, उनको छोड़कर कहीं अकर्मण्य होने का भाव नहीं है। जो ऐसा सोचते हैं वह कबीरदास को समझते ही नहीं। बल्कि उनके ज्ञान को वह अनदेखा करते हैं। **कबीरदास के जीवात्मा सम्बन्धी विचार** भी इनके काव्य में देखे जा सकते हैं। इसलिए इन्होंने जीवात्मा को ईश्वर का अंश माना है और उस अंश को कबीर उस ब्रह्म में जोड़ने का प्रयास करते रहे हैं। इसीलिये कबीरदास ने हठयोग का भी सहारा लिया है जिसमें स्पष्ट करते हुए इन काव्य पंक्ति में कह रहे हैं–

''कह कबीर इहु राम को अंसु।
जस कागज पर मिटै न मंसु।।''

इसलिए तो आत्मा और परमात्मा के बीच प्रिया और प्रियतम के सम्बन्ध को कबीरदास जोड़ रहे हैं। वह बिना बन्धन के स्पष्ट कह रहे हैं :–

''प्रीतम कूँ पत्तियाँ लिखूँ
जो कहीं होय विदेश।
तन में मन में नैन में,
ताकी कहा सन्देश।''

कबीरदास भी मोक्ष का वही कारण मानते हैं जो संसार के अन्य सन्त भी स्वीकार करते आ रहे हैं अर्थात् माया की पहचान और उसका निराकरण जीव और ब्रह्म को एक साथ मिला देता है। जैसे जल की तरंग की स्थिति होती है अर्थात् वह प्रेम तत्व में ही समाहित होकर एकाकार जीव और ब्रह्म हो जाते हैं :–

'जैपे जलहि तरंग तरंगनी, ऐसे हम दिखलायेंगे।
कहै कबीर स्वामी सुख सागर, हंसहि हंस मिलायेंगे।।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- डॉ. रमेश चन्द लवानिया – मध्यकालीन कवि और उनका काव्य – पृ. सं. 19
- डॉ. रमेश चन्द लवानिया – मध्यकालीन कवि और उनका काव्य – पृ. सं. 20
- श्याम सुन्दर दास – सम्पादक – कबीर ग्रन्थावली
- डॉ. मौ. शब्बीर – हिन्दी भाषा और साहित्य – पृ. सं. 36
- डॉ. मौ. शब्बीर – हिन्दी भाषा और साहित्य – पृ. सं. 35